९. राजविद्याराजगुह्ययोग

श्रीभगवान बोले— दोषदृष्टि रहित तुमको मैं इस परम गुह्य ब्रह्मविद्या (ज्ञान) को ब्रह्म अनुभूति (विज्ञान) सहित कहता हूं, जिसे जानकर तुम जन्म-मरण दुःखरूपी संसार से मुक्त हो जाओगे. (९.०१)

यह तत्त्वज्ञान सब विद्याओं का राजा, रहस्यमय, अत्यन्त पवित्र, प्रत्यक्ष फल वाला, धर्मयुक्त, साधन में सुगम तथा अविनाशी है. (९.०२)

हे परन्तप अर्जुन, इस धर्म में श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे न प्राप्त होकर मृत्युरूपी संसार में बारम्बार जन्म लेते हैं. (९.०३)

यह सारा संसार मुझ परब्रह्म परमात्मा की आदि प्रकृति अर्थात् अव्यक्त अक्षरब्रह्म का विस्तार है. सभी मुझपर आश्रित या स्थित रहते हैं, मैं उनपर आश्रित नहीं रहता. (७.१२ भी देखें) (९.०४)

मेरी ईश्वरीय योगशक्ति को देखो कि वास्तव में मैं — सभी भूतों को उत्पन्न तथा पोषण करने वाला — उनपर आश्रित नहीं रहता तथा वे सब भी मुझपर आश्रित नहीं रहते. (भा.पु. २.०९.३४-३६ भी देखें) (९.०५)

जैसे सर्वत्र विचरण करने वाली महान् वायु सदा आकाश में (बिना कोई सहारा लिये) स्थित रहती है, वैसे ही सभी मुझ में स्थित रहते हैं, ऐसा समझो. (९.०६)

हे अर्जुन, एक कल्प के अन्त में सम्पूर्ण सृष्टि मेरी आदि प्रकृति में लय हो जाती है और दूसरे कल्प के प्रारम्भ में मैं फिर उसकी रचना करता हूं. (९.०७)

मैं अपनी मायारूपी प्रकृति के द्वारा इन समस्त प्राणि समुदाय को — जो प्रकृति (के गुणों) के वश में रहते हैं — बार-बार रचता हूं. (९.०८)

हे अर्जुन, सृष्टि की रचना आदि कर्मों में अनासक्त और उदासीन रहने के कारण वे कर्म मुझ (परमात्मा) को नहीं बांधते. (९.०९)

हे अर्जुन, मेरी अध्यक्षता में माया देवी (अपनी प्रकृति के द्वारा) चराचर जगत को उत्पन्न करती है. इस तरह सृष्टि-चक्र चलता रहता है. (१४.०३ भी देखें) (९.१०)

मुझ परमेश्वर के परम भाव को नहीं जानने के कारण — जब मैं मनुष्य का शरीर धारण करता हूं — मूढ़ लोग (मुझे साधारण मनुष्य समझकर) मेरा अनादर करते हैं, क्योंकि वे राक्षसी और आसुरी स्वभाव से मोहित, वृथा आशा, वृथा कर्म तथा वृथा ज्ञान वाले अविचारी मनुष्य (मुझे नहीं पहचान पाते) हैं. (९.११-१२)

परन्तु हे अर्जुन, दैवी स्वभाव वाले महात्मा लोग मुझे अविनाशी तथा सम्पूर्ण प्राणियों का कारण समझकर अनन्य मन से मेरी भक्ति करते हैं. (९.१३)

मेरा सतत कीर्तन करते हुए, प्रयत्नशील, दृढ़व्रती साधक मुझे नमस्कार करके भक्तिपूर्वक निरन्तर मेरी उपासना करते हैं. (९.१४)

कोई साधक ज्ञानयज्ञ के द्वारा, कोई अद्वैतभाव से, दूसरे द्वैतभाव से तथा कोई अनेक प्रकार से पूजा करके मुझ विराट्स्वरूप परमेश्वर की उपासना करते हैं. (९.१५)

धार्मिक संस्कार मैं हूं, यज्ञ मैं हूं, स्वधा मैं हूं, औषधि मैं हूं, मंत्र मैं हूं, घी मैं हूं, अग्नि मैं हूं तथा हवन कर्म भी मैं ही हूं. (४.२४ भी देखें). मैं ही इस जगत का पिता, माता, धारण करने वाला और पितामह हूं. मैं ही जानने योग्य वस्तु हूं; पवित्र ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूं. प्राप्त करने योग्य परमधाम, भरण करने वाला, सबका स्वामी, साक्षी, निवासस्थान, शरण लेने योग्य, मित्र, उत्पत्ति, प्रलय, आधार, निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूं. (७.१०, १०.३९ भी देखें) (९.१६-१८)

हे अर्जुन, मैं ही (संसार के हित के लिए) सूर्यरूप से तपाता हूं, मैं वर्षा का निग्रह और उत्सर्जन करता हूं. अमृत और मृत्यु तथा सत् और असत् भी मैं ही हूं. (१३.१२ भी देखें) (९.१९)

तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म करने वाले, (भक्तिरूपी) सोमरस पान करने वाले, पापरहित मनुष्य मुझे यज्ञ के द्वारा पूजकर स्वर्ग प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं, वे अपने पुण्यों के फलरूप इन्द्रलोक को प्राप्त कर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं (९.२०)

वे लोग उस विशाल स्वर्गलोक के भोगों को भोगकर, पुण्य समाप्त होने पर फिर मृत्युलोक में आते हैं. इस प्रकार तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म करने वाले मनुष्य आवागमन को प्राप्त होते हैं. (८.२५ भी देखें) (९.२१)

जो भक्तजन अनन्य भावसे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन नित्ययुक्त भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूं. (९.२२)

हे कुन्तीनन्दन अर्जुन, जो भक्त श्रद्धापूर्वक दूसरे देवी-देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरा ही पूजन करते हैं — पर अज्ञानपूर्वक. (९.२३)

क्योंकि सब यज्ञों का भोक्ता और स्वामी मैं—परब्रह्म परमात्मा—ही हूं; परन्तु वे मुझ (परमेश्वर के अधियज्ञ स्वरूप) को तत्त्व से नहीं जानते, इसीसे उनका पतन अर्थात् आवागमन होता है. (९.२४)

देवताओं को पूजने वाले देवलोक जाते हैं, पितरों को पूजने वाले पितृलोक जाते हैं, भूत-प्रेतों को पूजने वाले भूत-प्रेतों के लोक को जाते हैं तथा मेरी पूजा करने वाले भक्त मेरे परमधाम को जाते हैं (और उनका पुनर्जन्म नहीं होता). (८.१६ भी देखें) (९.२५)

जो मनुष्य प्रेमभक्ति से पत्र, फूल, फल, जल आदि कोई भी वस्तु मुझे अर्पण करता है, तो मैं उस शुद्धचित्त वाले भक्त का वह प्रेमोपहार केवल स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि उसका भोग भी करता हूं. (भा.पु. १०.८१.०४ भी देखें) (९.२६)

हे अर्जुन, तुम जो कुछ कर्म करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ हवन करते हो, जो दान देते हो, जो तप करते हो, वह सब मुझे ही अर्पण करो. (१२.१०, १८.४६ भी देखें) (९.२७)

इस प्रकार संन्यासयोगयुक्त होकर कार्य करने से तुम कर्मफल के शुभ और अशुभ दोनों बन्धनों से मुक्त होकर मुझे ही प्राप्त करोगे. (९.२८)

सभी प्राणी मेरे लिए बराबर हैं. न मेरा कोई अप्रिय है और न प्रिय; परन्तु जो श्रद्धा और प्रेम से मेरी उपासना करते हैं, वे मेरे समीप रहते हैं और मैं भी उनके निकट रहता हूं. (७.१८ भी देखें) (९.२९)

यदि कोई बड़े-से-बड़ा दुराचारी भी अनन्य भक्ति-भाव से मुझे भजता है, तो उसे भी साधु ही मानना चाहिए, क्योंकि उसने यथार्थ निश्चय किया है. (९.३०)

और वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है तथा परम शान्ति को प्राप्त होता है. हे अर्जुन, तुम यह निश्चयपूर्वक सत्य मानो कि मेरे भक्त का कभी भी विनाश अर्थात् पतन नहीं होता है. (९.३१)

हे अर्जुन, स्त्री, वैश्य, शूद्र, पापी आदि जो कोई भी मेरी शरण में आते हैं, वे सभी परमधाम को प्राप्त करते हैं. (१८.६६ भी देखें) (९.३२)

फिर पुण्यशील ब्राह्मणों और राजर्षि भक्तजनों का तो कहना ही क्या? इसलिए यह क्षणभंगुर और सुखरहित मनुष्य शरीर पाकर तुम निरन्तर मेरा ही भजन करो. (९.३३)

मुझ में मन लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो, मुझे प्रणाम करो. इस प्रकार मुझे अपना परम लक्ष्य मानकर अपने-आप को मुझ से युक्त करके तुम मुझे ही प्राप्त होगे. (९.३४)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥